सीतायन

धरती की बेटी का दिव्य अवतरण

अर्चना दास

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

BLUEROSE PUBLISHERS
India | U.K.

Copyright © Archana Das 2026

All rights reserved by author. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system or transmitted in any form or by any means, electronic, mechanical, photocopying, recording or otherwise, without the prior permission of the author. Although every precaution has been taken to verify the accuracy of the information contained herein, the publisher assumes no responsibility for any errors or omissions. No liability is assumed for damages that may result from the use of information contained within.

BlueRose Publishers takes no responsibility for any damages, losses, or liabilities that may arise from the use or misuse of the information, products, or services provided in this publication.

BlueRose ONE.com
Stories Matter
NewDelhi • London

For permissions requests or inquiries regarding this publication, please contact:

BLUEROSE PUBLISHERS
www.BlueRoseONE.com
info@bluerosepublishers.com
+91 8882 898 898
+4407342408967

ISBN: 978-93-7139-811-4

Typesetting: Sagar

First Edition: January 2026

कवयित्री परिचय

कवयित्री श्रीमती अर्चना दास, स्वर्गीय ऋषिकेश चन्द्र घोष, जो बिहार के भागलपुर जिला के ग्राम भुड़िया के निवासी थे, उनकी सुपुत्री तथा बिहार के भागलपुर के ही चाड़ावड़ ग्राम निवासी श्री राम कुमार की पत्नी हैं।

प्रिय पाठक के लिए दो शब्द –

बन्धुओं! देवी और देवता समान रूप से प्रतिष्ठित और पूजित हैं तो यदि भगवान राम के चरित्र और आदर्श को लेकर रामायण लिखा जा सकता है, तो माता सीता के चरित्र के लेकर सीतायन (सीता का अयण) भी लिखा जा सकता है ना! इसीलिए मैंने सीतायन लिखा है। यह संक्षिप्त है। महाकवि तुलसीदास ने राम के चरित्र का संपूर्ण विशद वर्णन किया है पर मैंने अपने अति लघु काव्य-खंड में मूल कथा को अति संक्षिप्त रूप में लिखा है।

सामर्थ्य अनुसार काव्य के सौंदर्य स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। और रचनाकार का अपना दृष्टिकोण भी होता है अतः मेरी इस अत्यंत लघु रचना में भी मेरे दृष्टिकोण हैं।

आशा है लघु किन्तु मेरे इस नवीन प्रयास को पाठकों का प्रोत्साहन और भरपूर प्यार मिलेगा।

सीतायन

जब राजऋषि (राजा + ऋषि) हल चलाते हैं ।

तब धरा उत्तम राजा के श्रेष्ठता पर मुस्काती है ।

तब शक्ति स्वरूपिणी माता स्वयं शिशु रुप में आती है ।

तब महाराज सुखद अचरज से भीने होकर माँ सुनैना के पास आते हैं ।

माँ जानकी के अतुल अद्भुत स्वर्गिक रूप दिखाते हैं ।

पा स्वर्गिक अलौकिक रूप राशि की कन्या धन्य सभी हो जाते हैं।

माता सीता को निज तनया स्वरुप में जब पाते हैं ।

राजभवन के सुखमय उपवन में तब नन्हीं सिया मुस्काती है ।

तब धन्य धरा स्वर्ग से भी अधिक निखर जाती है ।

चारों बहनों की अग्रजा बन, बहनों पर स्नेह सुधा लुटाती है ।

बालपन के आनन्द का सघन उपवन हो ज्यों राजभवन ।

राजर्षि और राजमाता रहते ऐसे जैसे सत्चित् आनंद का स्वरुप हो जीवन ।

हाँ भूली मैं ! स्मरण कानन में कुछ अति सुधायण स्मरण ।

सिया के तीनों बहनों का नामाकरण ।

माँ सुनैना और महाराजा जनक की तनया माता सीता और उर्मिला ।

माँ चंद्रभागा और जनक कुराध्वज श्रुतिकृति और माण्डवी को देकर पूरी की सुन्दर माला ।

धरा पर आयी ब्रह्माण्ड की अनुपम कृति ।

कैसे न धरती अनुपम स्वरुप में निखरती ।

जब नन्हीं बहनें थोड़ी बड़ी हो जाती हैं ।

शिक्षण-प्रशिक्षण हेतु गुरुवर राजभवन में आते हैं ।

ब्रह्मस्वरुपिणी माँ सिया के संग-संग तीनों बहनें भी शिक्षा पाती हैं ।

प्रकृति की सृष्टा प्रकृति के स्वरुप समझाने ।

जगत को प्रकृति का विराद ज्ञान देने ।

प्रयोग और उसका प्रभाव दर्शाने ।

शिक्षण में प्रयोग की महत्ता बताने ।

माँ जानकी कुछ दिन बाद जब थोड़ी बड़ी हो जाती है ।

चारों बहनें भी संग-संग सयानी होती हैं ।

धरा जब उन्हें पाकर धन्य-धन्य हो जाती हैं ।

धरा के जन ही नहीं, ऋषि-मुनि गण किन्नर गंधर्व भी आते हैं ।

केवल इतना ही नहीं समस्त देवगण भी आते हैं ।

सब सुख-भोग मान-मोद पाकर अति आनंदमय जीवन बिताते हैं।

एक दिन सयानी सिया, पूजा गृह को साफ जब करती है ।

भगवान शिव के धनुष को हटाकर आसानी से दूसरे जगह पर रखती है ।

मिथिला-नरेश अति अचंभित हो जाते हैं ।

सुखद अचरज में फूले नहीं समाते हैं ।

देवी माँ पुत्री स्वरुप में आयी हैं ।

तत्क्षण यह समझ जाते हैं ।

उसी दिन एक अति कठिन प्रण लेते हैं ।

धनु भंग संपन्न करने वाले भूप ही श्रेष्ठ होते हैं ।

यह धनु तो शिव का धनु है ।

भू सम भारी, हटाने वाली देवी है नहीं कोई मनु है ।

अतः धनुभग जो राजा अथवा देव करें ।

माँ सिया के योग्य उसी वर का वरण करें ।

समस्त भू मण्डल वासी भूप ।

यश बल, राज साम्राज्य जिसके अनुप ।

रूप गुण जिसके अपरम्पार जिसके अनुप ।

पा निमंत्रण खिले पुष्प स्वरुप ।

शायद हो यह मेरा सौभाग्य ।

प्राप्ति न लिखे शायद भाग्य ।

प्रयत्न भी तो बना सकता है भाग्य ।

विधि भी प्रयत्न के प्रोत्साहन हेतु बनाती भाग्य ।

देवी का मानवी स्वरुप हर मन को भाए है ।

हैं अनजान सभी देवता भी स्वयं मानव रूप में आए हैं ।

मनु-भुप जो देवता का है दूजा रूप ।

रघुनन्दन दशरथ सुत लिए है उन्होंने राम रूप ।

एक-एक कर हार रहे सब अतुलित भूप ।

विह्वल है देखकर सुनैना और जनक राजाओं का यह स्वरुप ।

सफल राजर्षि एक पिता भी हैं ।

राजरानी राजमाता एक माता भी हैं ।

आशाएं जब सब हो गई शेष ।

एक अति-कोमल सौंदर्य प्रतिक विशेष ।

लिए अधरों पर मुस्कान अशेष ।

निश्चित हो उठे जैसे बाल-क्रीड़ा का हो वेश ।

उठाया धनु ऐसे जैसे हो शिशु खिलौना ।

सब हैं अचंभित निरख कर रूप सलौना ।

चढ़ी प्रत्यंचा पर धनु की डोर ज्यों ।

टूटे खिलौना सम धनु उसी क्षण त्यों ।

खिल उठा राजर्षि और राजमाता का उर-पारावार ।

सभा और देवगण भी किया जय-जयकार ।

माँ जानकी के नयन से राम जीवन को लिखने के आतुर आवेग में ।

प्रभु अल्पमति के प्रथम अति-गतिमय संवेग में ।

भूली मैं कथा का हिस्सा विशेष ।

प्रिय पाठकों ! मेरी भूलों को न दें स्थान विशेष ।

धनु पूजन अनुष्ठान में जब हुए आमंत्रित गुरुवर विश्वामित्र ।

रात्रि प्रवास में थे संग उस दिन रघुवर और सौमित्र ।

उस स्वर्गिक स्वर्णिम सुबह में ।

सिया जब पूजन हेतु पुष्प लेने आती है ।

पुष्पवीथिका के लता ओर से ।

अनायास ही दो अद्भुत राजकुमार नजर आते हैं ।

उसमें एक छाया बन जाती है ।

राम के अलौकिक रूप पर सिया की नयन रुक जाती है ।

नयनाभिराम अपलक नयन ।

दोनों के नयन रुके एक-दूजे पर कुछ क्षण ।

उस निमित्त मात्र क्षण में ।

अपार दृश्य-अदृश्य तरंगें उठी मन में ।

कुछ क्षण दोनों स्वयं को विस्मृत कर गए ।

प्रेम के अद्भुत लोक में दोनों खो गए ।

अनायास हुआ एहसास हम यहाँ नहीं अकेले ।

गुरुवर संग है लखन जाने कैसे हम ये भूले ।

सिया को भी अनायास ही आया ध्यान ।

सखियों की टोली है संग सहसा हुआ ये भान ।

कुछ स्थिति भापकर शर्म से नयन झुका लिया ।

पर निमित्त मात्र के दर्शन से चित्त तो चुरा लिया ।

चित्त में प्रेम का हर्ष ।

भय भी उठ रहा दुर्धष ।

भाव तरंगों का ये उत्कर्ष-अपकर्ष ।

सखियों में होने लगी विचार-विमर्श ।

सखियों को भी हो गया सारी बातों का आभास ।

माँ सिया के मुख पर कभी आती थी कृत्रिम मंद हास्य ।

माँ सिया के मन सुकुमार राजकुँवर को लेकर है संशय अपार ।

प्रेमवश संशय का जगह ले चुकी है प्रार्थना अपार ।

टूटे या न टूटे, इस चिंता में गुजारी निंद्रा विहिन रात ।

सबके मन में ही झिलमिल रहा आतुर प्रभात ।

प्रातः राजकुमारों की पंक्ति में जब ।

अवलोकित हुए लखन राघव भी जब ।

तब थोड़ा हृदय को संबल और आस मिला ।

और आपार संशय भी था घुला-मिला ।

क्रमशः प्रगति पर चला धनु-भंग खेला ।

था लगा धरती पर अद्भुत मेला ।

मेरे सुधि पाठकों ! मेरे संग आपको भी हुआ होगा स्मरण ।

सिया के साहस और जनक का प्रण ।

रघुवर सिया के प्रेम का अविस्मरणीय क्षण ।

परंतु ज्ञात तथ्यों का कभी-कभी विस्मरण ।

ज्ञात है आपको बंधुगण धनुभंग के बाद की कथा ।

भगवन परशुराम के क्रोध और व्यथा गाथा ।

अत्यधिक रोष देखकर सौमित्र को आयी हँसी ।

क्रोधाग्नि ऋषिवर की कुछ और भड़क गयी ।

युद्ध की स्थिति देख शीतल हृदय रघुनंदन ने देखा प्रिय भाई को यूँ ।

नादान बालक की नादानी पर घर के बुजुर्ग मुस्काए ज्यों ।

शीत वचन राम के सुन ।

परशुराम ने राम के गुण लिए गुण ।

हो हर्षित बोले रघुनंदन ।

अब आदेश दें महात्मन ।

हर्ष की समुद्र में लहरें हैं अपार ।

अनायास उठा है ये विचार ।

कहा जनक ने हे सर्वज्ञ!

चाहता हूँ चारों कन्याओं का विवाह ।

चारों भाइयों से ही हो जाए आज ।

तो जीवन का पूरा हो यज्ञ ।

सो हे रघुवर! प्रस्ताव लेकर जाइए ।

बारात लेकर आइए ।

वापस आकर अयोध्या नगरी ।

हर्षित समाचार की छलकायी गगरी ।

यह सुन दशरथ संग रानियाँ हर्षायी ।

तत्क्षण नगर में घोषणा करवायी ।

स्वर्गिक सम सुन्दर बारात सजायी ।

स्वर्ग आज जैसे धरा पर आयी ।

त्रेतायुग के युगावतार आए हैं मिथिला के द्वार ।

जगत जननी माँ जानकी के उर में है हर्ष अपार ।

चारों युवराज के हृदय के हर्ष तरंग ।

चारों बहनों में प्रविष्ट हुई बनकर अनंत उमंग ।

ब्रह्माण्ड के सर्वाधिक सुसज्जित मण्डप आलोकित ।

हुआ जगत में प्रथम अनुपम अवलोकित ।

सूर्य चन्द्र तारे नक्षत्र ।

चहुँ ओर सभी दमकते सर्वत्र ।

विवाह, देवगण, मुनिगण, राजाओं के समक्ष ।

धरा ही नहीं ब्रह्माण्ड समस्त बने गवाक्ष ।

किन्तु विवाहोपरान्त की सुबह ।

मुस्कुरा कर जाग रही थी सुबह ।

पर जगमग राजभवन में विदायी की बेला भी आयी ।

जगमग राजभवन में फिर सूनापन भी छायी ।

स्नेह सुधामय भाग जब जीवन से आंशिक रूप से भी छूटे ।

तो सहज स्नेह में आप्लावित (भींगा) मन गहन रूप से टूटे ।

और उस हाल में जब घर में कोई भ्राता भी न हो ।

ललनाओं में से किसी को मायके में रहने की अनुमति भी न हो ।

टूटा होगा हृदय का हार भी मनुहार भी ।

छूटा होगा घर का श्री श्रृंगार भी ।

एक अनुनय है पाठकों! परम्परा वही हो जो भाए मन को ।

परम्पराएं वह न हो जो दुःसह हो जीवन को ।

सहोदर भ्राता रहने पर तो किसी की बेटी आए बहू बनकर ।

पर जिस घर में भाई न हो आए घर में जमाता बेटा बनकर ।

वैसे ही जिस घर में बेटी न हो आएँ बहू बेटी ही बनकर ।

ताकि गृह वाटिका रहे हमेशा ही सजकर ।

नारियाँ तो फिर भी परम्परा में निभा जाती हैं दोनों कुल को ।

पर पुरुष सदा रहते केवल अपने कुल के ।

कहने को रिश्तों के नाम बँधते हैं दोनों कुल के ।

परन्तु पुरुष के कर्त्तव्य सदा होते केवल पितृकुल के ।

क्यों न स्त्री-पुरुष हो मन-कर्म-वचन से दोनों कुल के ।

विवाह हो बंधन कर्त्तव्य संग आनंद उत्साह के ।

पर अनुपम है जगत की यह रीत भी ।

नैहर की दुलारी बनती है ससुराल की प्रीत भी ।

चलती है जीवन की निरन्तर सुंदर गति ।

अयोध्या हुई ज्योर्तिमय फैली चहुँ ओर ज्योति ।

जगतमाता माँ सीता बन वधु आयी अयोध्या द्वार ।

रघुकुल संग संपूर्ण नगर के खिले है पूरी नगरी उर-पारावार ।

हर्ष के इस अद्भुत सुखद पल में ।

महाराज दशरथ मगन हो मन में ।

प्रतिक्षित स्वप्न पूर्ण हुआ है ।

सारे अरमान संपूर्ण हुआ है ।

आनंद के इस सुखद पल में ।

सोच रहे भूप अपने मन में ।

अब न कोई दायित्व शेष ।

अब पूर्ण हुए सारे अरमां विशेष ।

बस एक आखिरी और सर्वाधिक प्रिय अरमान है शेष ।

कर दूँ अपने ज्येष्ठ तनय का इसी पल में राज्याभिषेक ।

उधर रघुवर की संपूर्ण निधी लिए अनुपम रूप राशि ।

संग धरणी मुस्कुरा रही ब्रह्माण्ड सहित पुलकित है पृथ्वी ।

प्रणय का यह अनमोल पल ।

डूबे हों जैसे अवनी और अम्बर तल ।

महाराज दशरथ इधर राज्याभिषेक की योजना बना रहे ।

अद्भुत अखंड आनन्द उर में न समा रहे ।

हो गयी आदेश जारी ।

नगरवासी करे राज्याभिषेक की तैयारी ।

पर नहीं ज्ञात उन्हें कुछ अलग ही योजना विधि है बना रही ।

दासी मंथरा कुछ अलग ही प्रवंचना है रच रही ।

इस कुटिल संरचना प्रवंचना में ।

बोया कुटिलता का बीज भोली कैकई के मन में ।

कहा मंथरा ने चुपके से कैकई के कर्ण में ।

राम के बदले माँग भरत का राज माँग इसी क्षण में ।

याद है न तुझको अपना त्याग और राजा के वचन ।

इतना तो मुझे भी ज्ञात है रघुकुल के राजा तोड़ते नहीं वचन ।

रह न मौन या असमंजस में भोली ।

माँग ले मौका यही है अपने वर ओ सलौनी ।

कहा था दासी मंथरा ने विषमय वचन को मधु में लपेटकर ।

भोली कैकई को न था भान कुटिल चाल का ।

रख न सकी मन को समेटकर ।

आ गयी जब दासी मंथरा की बात में ।

चल रही थी चाल कुटिलतम अपनी अगली चाल में ।

और कहा सुन ओ कैकई भोली ।

राजा और राम दोनों चतुर हैं लुट न जाना तू बनकर भोली ।

राम का अपना राज्य छोड़ेगा सहर्ष ।

माँगना दूजे वर में राम का वनवास हो पूरे चौदह वर्ष ।

भरत का राज्याभिषेक राम का चौदह वर्ष वनवास ।

होगा तेरा संपूर्ण जगत में जितने हैं अरमान आस ।

कुटिल मंथरा ने पूर्ण योजना बना ।

कैकई को अनहोनी के लिए तैयार किया ।

सुन ओ भोली राजा सहर्ष नहीं बात ये मानेंगे ।

तू राज श्रृंगार छोड़ कोपभवन में जा बैठ तब राजा कारण पूछेंगे ।

भोली कैकई मंथरा की बात मान ।

कोपभवन की ओर किया प्रयाण ।

अनन्य सघन उमंग की बेला में ।

राजा ने प्रिय कैकई को न देखा राजप्रसाद की मेला में ।

ढूँढते राजा ने देखा ।

कैकई को कोपभवन में पाया ।

अति विस्मित हो राजा ने देखे ।

फिर अचानक ओंठ खोल प्यार से बोले ।

है आनन्द का क्षण ये पगली ।

श्रृंगार छोड़ तूने क्यों ये भेष है बदली ।

तुम तो मुझको अत्यधिक प्रिय ।

कुछ गलती हुई क्या मुझसे प्रिय ।

हो कोई भी त्रुटि मैं करूँगा दूर अभी ।

पर मैं न समझ पा रहा इस समय तेरा भेष अभी ।

कैकई के हृदय–मन को मंथरा दूषित कर चुकी थी ।

इसलिए तो आनंदित पल में दुखी भेष में कोपभवन में पड़ी थी ।

देखा कैकई ने राजा कह रहे अनुनय भरे वचन ।

याद दिलाया राजा को अपने वचन तत्क्षण ।

कहा स्मरण है महाराज आपने कभी दिया था मुझको दो वर माँगने का वचन ।

कहा राजा ने याद करते हुए– हाँ बिल्कुल याद है प्रिये ।

रघुकुल राजा भी क्या कभी भूले वचन जो लिया ।

माँगो जो माँगना है करो न विलंब एक क्षण ।

वर देने को राजा को तैयार देख ।

सारी स्थिति अनुकूल देख ।

कहा कैकई ने तपाक कर दो भरत का राज्याभिषेक ।

कहा दशरथ ने 'तथास्तु' लगाऊँ न मैं क्षण एक ।

तू नहीं जानती है क्या पगली! राम तो स्वभाव से हैं परम ऋषि ।

भरत को हो राज या राम को, मुझको क्यों हो आपत्ति कहीं ।

फिर कहा कैकई ना दूजा वचन शेष है अभी ।

कहा दशरथ ने उसे भी तू माँग ले तुरंत अभी ।

राम को दो चौदह वर्ष का वनवास ।

राजा को एक पल हुआ न तनिक विश्वास ।

सोचा मैंने शायद गलत सुना हो ।

भ्रान्ति तो होता ही रहता है ।

फिर कहा जरा फिर से कहना ।

लगता है मैंने कुछ गलत सुना ।

कहा कैकई ने क्या सोच रहे महाराज ।

कुछ गलत नहीं सुना आपने ।

मैंने माँगा राम का चौदह वर्ष वनवास ।

राजा को अपने कानों पर फिर भी नहीं हुआ विश्वास ।

लगा पल भर को पूरे तन को हो गया हो जैसे सन्निपात ।

कहा रोते-तड़पते राजा ने हाय ये तूने क्या माँगा कुलटा ।

आनन्द भवन अयोध्या को आनन्द के बदले दुख दिया उल्टा ।

सहसा कुछ स्मरण हो गया दशरथ को ।

कहा दुःख की सारी शिराएँ समेट के ।

तू जो कह रही है नहीं इसमें तेरा दोष ।

पलटा ही बनकर अभिशाप मेरा ही दोष ।

भूलवश भी हो यदि मानव हत्या का पाप ।

छूटते नहीं शायद वो दुःसह अभिशाप ।

परन्तु आखिर तो भूल ही थी ।

पश्चाताप की फिर भी गड़ी शूल ही थी ।

शायद दुःसह दुःख के अभिशाप नहीं मिटते ।

मानव हत्या भूलवश भी हो तो क्षमा योग्य नहीं होते ।

और कष्ट तो पशु प्राणों को भी होते हैं ।

परन्तु राज-मद में शायद इसे अधिकार कह जाते हैं ।

मैं तो अभिशापवश मिटूँगा ही ।

लेकिन पशु-हत्या की परम्परा आज से मिटाऊँगा भी ।

क्षीण प्राण की अवस्था में किया याद मंत्री सुमंत को ।

हो सके तो हटाना इस कुत्सित प्रथा को ।

भविष्य में न राजा जीव हत्या को बनाएँ मनोरंजन प्रथा को ।

जीव निर्माण जब केवल हो ईश कृपा से ।

तो जीव हत्या क्यों करे केवल मानव हक से ।

और एक बात कहना चाहूँ मानव समाज से ।

भविष्य में न हो मानव हत्या भूल से ।

और यदि अनजाने में कुछ अप्रिय हो जाए ।

तो दुःसह प्राण मिटकर भी अनजाने को माफ कर पाए ।

अनजान होना पाप नहीं है ।

जो पाप न हो उसके लिए अभिशाप नहीं है ।

परन्तु अत्यन्त विषमय दुष्ट कोई पशु हो या मानव ।

पशु तो पहचाने जाते हैं, नहीं दृष्टिगोचर होते दानव-रूपी मानव ।

वध करने को ऐसे पशु और मानव का ।

न विलंव कीजिए कभी क्षण भर का ।

क्षमा करना बंधुगण ।

दशरथ और सुमंत के बीच शिकार को लेकर न हुई ऐसी वार्त्ता कोई ।

पर कवयित्री अपनी संवेदना में स्वतंत्र ।

विचार रखने को स्वतंत्र है कहीं न कहीं ।

इसलिये ये नयी वार्त्ता हुई ।

भविष्य के लिए जुड़ी एक सुन्दर कड़ी ।

हर पुरानी कुप्रथा टूटती है ।

तब बनती है सुन्दर प्रथा नयी ।

पर यहाँ न थी ऐसी कोई बात कहीं ।

प्राणों में प्राणरस की थी अब अंतिम बूंद नहीं ।

वचनबद्ध राजा ने अत्यंत मर्मांतक पीड़ा में प्राण त्यागे ।

वचन निर्वहन को आखिरी साँस तक न एक क्षण भागे ।

तात निधन की बात सुन भरत अयोध्या मामा के घर से तुरंत वापस आए ।

कथा सुनायी जब कौशल्या और सुमित्रा माता ने ।

उसी क्षण अत्यंत कठोरता से दासी मंथरा को स्वर्ग लोक पहुँचाए।

फिर कहा माता से भरत ने ।

हाय पापिनी! तूने न भैया को पहचाने ।

भैया का मुझपर अनुपम स्नेह ।

धन-पद-ऐश्वर्य का नहीं उन्हें तनिक नेह ।

उस पर आज्ञाकारी बालक ।

उस पर भी माता आप सर्वाधिक थी स्नेही पालक ।

इतना ही नहीं काफी था क्या ।

राज्याभिषेक मेरा माँगा था ।

सहर्ष स्वभाववश सब देते भैया ।

ये दुःसह दुःख न सहना पड़ता मैया ।

खैर जाने दो बीता क्षण तो वापस न ला पाऊँगा ।

पर भैया को मनाकर लौटाने हर हाल में जाऊँगा ।

भैया को तज, ताज ग्रहण करूँगा नहीं ।

मैं उन्हें मनाए बगैर वापस लौटूँगा नहीं ।

गए मनाने भगवान को भारत ।

बहुसंख्य मंत्री राज्य निवासी संग उनके चल पड़े तुरंत ।

लक्ष्मण को भरत संग देख राज समाज संशय हुआ भारी ।

तब रघुवर बोले अनुनय पगी वाणी प्यारी ।

जानते नहीं क्या भरत को भाई ।

अनन्य प्रेम उसके जैसा दूजा कहाँ है भाई ।

आए फिर साथ दोनों भाई ।

भरत मिलाप सब गले लगे एक-दूजे के भाई ।

समझाया राम ने राज्य चलता नहीं बिन राजा के भरत भाई ।

लौट जाओ भाई अवधिपूर्ण कर फिर आऊँगा वहीं ।

कहा भरत ने राज्य चलाऊँगा आपको आदर्श मान ।

राजा सम नहीं बिताऊँगा मैं भी वनवासी समान ।

भरत शत्रुघ्न चला रहे थे अयोध्या का राज-काज ।

और वन जाकर उद्धारा (तारा) सकल वन-समाज ।

कभी केवट के अनुनय सुने ।

कभी निषाद के गले लगे ।

कभी सबरी के जूठे बेर चखे ।

बहुकाल यूँ हुआ व्यतीत ।

वन में ऋषियों का उद्धार हुआ ।

था जो बहुप्रतीक्षित ।

असुर बहुसंहार हुए ।

संतों पर उपकार हुए ।

कालान्तर में एक दिवस, माता सीता स्वर्णमृग आया नजर ।

स्वर्णमृग लाने के अनुनय पर लड़ते राघव ।

जाने क्यों माँ को संकट में रघुनंदन के होने का हुआ आभास ।

लक्ष्मण भैया संकट में हैं! बोली सहास ।

बोले लक्ष्मण द्वंद में पड़कर, भाभी जाऊँ मैं कैसे ?

आपको छोड़कर भैया के आदेश मैं भूलूँ कैसे ?

आग्रह और आदेश जब जानकी ने दिया ।

लक्ष्मण ने लक्ष्मणरेखा खींच दिया ।

कहा मत पार करना भूलकर भी इसे भाभी ।

पार करने पर इसे होगा संकट भारी ।

एक बात पूछूँ माँ जानकी ?

एक स्त्री के नाते तुमने राज का सब सुख त्यागा ।

फिर स्त्री का स्वर्ण मोह कौन सा आदर्श था ?

स्वर्णमृग के होने पर क्यों हुआ आपको तनिक संदेह नहीं ।

मानव स्वरुप में भी क्या ये रघुनंदन किसी सीमा में बँधे ?

फिर आपने ही क्यों सीमा में बँधना स्वीकार किया ?

शक्ति स्वरुपी होकर भी क्यों दुर्बलता स्वीकार किया ?

उसी क्षण ही अगर स्वयं ही रावण का संहार किया होता ।

यदि प्रतिशोध लेने आते रावण के सब भ्राता ।

तत्क्षण रावण संग संहारित होता सभी ।

न किसी तरह का कलंक का प्रश्न उठता कभी ।

न हठी दुमार्गी, कुमार्गी कलुषित वृत्ति के धोबी को अवसर मिलता ।

न आपका अपहरण होता न पुनः कोई निर्वासन होता ।

राजाहीन राज्य को विभिषण तब भी सँभालता ।

बस केवल सुख की ही गाथा होती ।

स्त्री के आदर्श में भिरुता नहीं, वरण शौर्य गाथा होती ।

मानवीय प्रेम के दर्शन के तो अवसर पहले भी थे हजार ।

राजदुलारी राजवधु और देवी ने किया था जब हर सुख का त्याग ।

गर्व और हर्ष अश्रु थे उपयोगी पहले भी ।

सारे भावों के दर्शन तो हो गए थे पहले भी ।

तब स्त्री को शक्तिहीन दिखाने की कैसी आवश्यकता थी माता ?

ये कैसा आदर्श था माता ?

भगवान राम को मानवी स्वरुप रखने को ।

क्या अग्नि प्रवेश की हुई आवश्यकता कभी ?

मुस्कुराकर क्षमा करती सिया ।

मानवी भूल हो तो अगर, तो भुला दिया ।

सदियों तक चलता नहीं स्त्री की दुःख गाथा ।

सीता के अयन का भी चित्रण सर्वोत्तम रुप में सजता ।

सियाराम चरित पावन का सहर्ष होता समापण !

जय सिया राम

जय जय सिया राम !!